**Content is available at: CRDEEP Journals**
**Journal homepage: http://www.crdeepjournal.org/category/journals/ijssah/**

**International Journal of Social Sciences Arts and Humanities**
**(ISSN: 2321-4147) (Scientific Journal Impact Factor: 6.002)**
**A Peer Reviewed UGC Approved Quarterly Journal**

**Full Length Research Paper**

# हाथरस-जनपद का लोक संगीत- 'रसिया'

डॉ० शालिनी[1] **और** विकास जोशी[2]1
[1]-सहायक आचार्य, चौधरी रणवीर सिंह विश्वविद्यालय, जींद, हरियाणा
[2]-शोधार्थी, इतिहास विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड

**ARTICLE DETAILS**

***Corresponding Author:***
विकास जोशी

***Key words:***
रसिया, अनहद, लोक संगीत, रसिक शिरोमणि, हैकरा, कलंगड़ा रंगत'

**सारांश**

संगीत प्रकृति की आत्मा है। सच कहें तो मनुष्य के जीवन में भी अनहद संगीत चलता रहता है, यदि हम प्रकृति पर ध्यान दें तो प्रकृति की हर रचना से हमें मधुर संगीत श्रव्य होता है। नदी, झरने, हवा सब संगीत की धुनों से झंकृत हैं और जब हम इस संगीत को महसूस करते हैं तो हमें आनंद की जो अनुभूति प्राप्त होती है उसे ही भारतीय संतों और अन्य दार्शनिकों ने परमआनंद की संज्ञा प्रदान की है। विवेकशील होने के नाते मानव की प्रारम्भ से ही संगीत में अभिरूचि रही होगी और इसी अभिरुची के होने से उसे संगीत की प्रेरणा प्राप्त हुई होगी। प्रत्येक पाक-कला और शास्त्र की उत्पत्ति का काल बहुत ही सामान्य और धुँधला होता है। भाषा शास्त्र के तमाम मूर्धन्य विद्वानों का यह मानना है कि, संगीत की उत्पत्ति भाषा के आविष्कार से पहले ही हो गई थी। डॉ. बर्ने का कथन है कि, मानव और संगीत एक साथ पैदा हुऐ हैं। मनुष्य के लिए संगीत कला इतनी स्वभाविक है कि जहाँ भी वर्णोच्चार होता है संगीत वहीं उत्पन्न हो जाता है। वस्तुतः मानव जीवन हर्ष और विशाद का उद्गम स्थान है और दोनों भाव संगीत के माध्यम से व्यक्त होते हैं। कुछ विद्वानों ने संगीत की उत्पत्ति भगवान शंकर और विद्या की देवी माँ सरस्वती से मानी है, जहाँ माँ सरस्वती के हाथ में वीणा है, वहीं ऐसा माना जाता है कि भगवान शंकर के हाथ में राग है। और भारतीय संगीत की उत्पत्ति यहीं से मानी जाती है। पश्चिमी विद्वान फ्रेडरिक ने संगीत के बारे में विचार रखते हुए कहा है कि, 'जीवन की सार्थकता संगीत के ही कारण मानी है।' वहीं स्कात महोदय ने संगीत के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि 'जिस मनुष्य का हृदय संगीत के मधुर स्वर से नही धड़कता वह अपनी आत्मा के साथ मृत्यु की अंतिम साँसे भरता है।' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर संगीत के दो रूप पाये जाते हैं, मार्गी संगीत और देशी/लोक संगीत। मार्गी संगीत शब्द का अर्थ है अन्वेषण करना, इस संगीत का उद्देश्य है ईश्वर की प्राप्ति। इसके नियम और सिद्धान्त अविकृत होते हैं। यह संगीत गन्धर्व लोक में व्याप्त होता है। महर्षि नारद द्वारा इस संगीत का उपदेश मृत्यु-लोक के निवासियों को दिया गया था। वहीं लोक संगीत का जन्म जनमानस से हुआ है और लोक मानस का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मनुष्य के उद्भव का। आगे इस शोधपत्र में

संगीत का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है इसका संबध मानव जीवन से है दूसरे शब्दों में संगीत मानव जीवन से अनन्त और व्यापक स्तर पर सम्बंधित है। वीर, रौद्र, करूण, श्रृंगार, भयानक, हास्य और शांत आदि सभी नौ रसों की अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से होती है।

**लोक संगीत का जन्मः-** लोक संगीत को जनमानस की भावनाओं और उसकी तरंगों से उत्पन्न संगीत कहा जा सकता है। यह ठीक है कि कोई भी रचना व्यक्ति विशेष के ही माध्यम से होनी है लेकिन जब उस रचना के रचनाकार का या गायक का नाम महत्वपूर्ण ना रहकर उसका कार्य महत्वपूर्ण हो जाता है तो वह रचना या गायिकी संगीत बन जाती है। किसी भी लोक संगीत में सामन्यतः तीन प्रमुख विषेशताएँ हो सकती हैं। पहला वह लोक निर्मित होना चाहिए, दूसरा वह लोक प्रचलित होना चाहिए, और तीसरा उसे निश्चित रूप से लोक विषयक होना चाहिए। इस प्रकार हम इस बात को जान सकते हैं कि लोक संगीत का जन्म मानव जीवन के साथ ही हुआ है और संभवतः यह शास्त्रीय संगीत से भी पुराना है। लोक संगीत सहज ग्रहणीय होने के कारण प्रत्येक उम्र के व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करता है। जीवन से जुड़ी हुई परिस्थितियों में जब लोक संगीत का स्वर गूंजता है तो वह अनायास ही रस की वर्षा करने लगता है। लोक संगीत में मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीत इतनी

[1] *Author can be contacted at:* शोधार्थी, इतिहास विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखंड.
*Received: 12-11-2024; Sent for Review on: 15-11-2024; Draft sent to Author for corrections: 21-11-2024; Accepted on: 01-12-2024; Online Available from 03-12- 2024*
DOI: 10.13140/RG.2.2.10786.54726
IJSSAH-9999/© *2024 CRDEEP Journals. All Rights Reserved.*

बखूबी से गढे होते हैं कि मनुष्य अपने समाज और मिट्टी से अनायास ही जुड़ जाता है। दरसल यदि सही अर्थों में कहा जाए तो व्यक्ति और समाज के सुख-दुःख का ही सही प्रतिबिम्ब लोक संगीत है।

**लोक संगीत का अर्थ और परिभाषाएं -** लोक संगीत दो शब्दों से मिलकर बना है, पहला लोक और दूसरा संगीत और इसका सामान्य अर्थ है लोगो का संगीत। लोक शब्द की व्याख्या हेतु ऋग्वेद में 'देहि लोकम' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जहाँ लोक शब्द का अर्थ स्थान से है। 'गीता' में भी लोक शास्त्र तथा लौकिक आचारों की महत्ता स्वीकार की गई है। लोक संगीत का शाब्दिक अर्थ सामान्य लोगों द्वारा अभ्यास किये जाने वाले संगीत से है, जिसे पाश्चात्य सभ्यता में फोक म्यूजिक कहा जाता है। जिस प्रकार संगीत की परिभाषा के अन्तर्गत गायन, वादन और नृत्य का समावेष है ठीक उसी प्रकार लोक संगीत के अन्तर्गत लोकगीतों, लोक वाद्यों और लोकनृत्यों का समावेश है। पंडित ओंकारनाथ ठाकुर के मतानुसार देशी संगीत की पृष्ठभूमि ही लोक संगीत है। वहीं भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी लोक संगीत के बारे में विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'लोक संगीत में चराचर जगत, गाता और नृत्य करता है। रविन्द्रनाथ टैगोर ने भी लोक संगीत को 'संस्कृति का सुखद संदेष ले जाने वाली कला बतलाया है।

**लोक संगीत के प्रमुख रूप रसिया:-** 15वीं शताब्दी में जब भारतीय भूमि पर मुस्लिम आक्रांताओं की धर्मान्धता से यहाँ की सामान्य और मासूम जनता पराधीनता और उत्पीड़न से परेशान और निराश हो चुकी थी, तब ऐसे समय में दक्षिण से आए धर्माचार्यों ने उस नैराश्य में जनता को सगुण कृष्ण भक्ति मनोमुग्धकारी संबल प्रदान करते हुए लोक मानस के जीवन को संवारने का कार्य किया। उस समय हाथरस बृजक्षेत्र के अन्तर्गत ही शामिल था। उपनिषदों में जिस रसो वै सः के कथन पर जोर दिया गया है, वास्तव में रसिया के माध्यम से ब्रजभाषी क्षेत्र के लोगों ने उसी भावना को प्रतिष्ठित करने का कार्य किया है। वस्तुतः देखा जाए तो रसिया मात्र केवल संगीत की एक धुन नहीं है बल्कि वह रसिक शिरोमणि, भगवान कृष्ण का एक नाम भी है जिसे अनेक लोक गायकों ने अपने गायन के दौरान अभिव्यक्त भी किया है। हाथरस के लोग आज भी नारायण स्वामी नामक कलाकार को रसिया के नाम से याद करते हैं जो कि एक मस्तमौला कवि थे, जिन्होंने लिखा है- 'मति भोर प्रगन की चोट रसिया होरी में मेरे लगी जायगी।' मान्यतानुसार यह कहा जाता है कि रसिया की उत्पत्ति ध्रुपद से हुई है, परन्तु यह विषय सोचने का है कि शास्त्रीय संगीत की एक सुदृढ़ परम्परा लोक संगीत कैसे बन गई। इस बात का जवाब भी ब्रज की गायन परंपरा के विकास क्रम में सन्निहित है। हमारे कई लोक गायकों ने भक्त कवियों के पदों को रसिया की धुन में गाया है। उदाहरण के लिए- सूरदास जी का एक प्रसिद्ध पद- "मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो" को हमारे लोक गायकों ने रसिया की धुन मैं ढालकर कुछ यूँ प्रस्तुत किया है- "अरी मैं नाहि माखन खायौ सौ मैया मोरी मैं नाहि माखन खायौ।" इसी प्रकार उनका एक दूसरा पद है जिसमें बालक कृष्ण को यशोदा मैय्या व रोहिणी माँ चलना सीखा रही हैं। हमारे लोक गायकों ने इस पद के साथ घुँघरू की धुन जोड़कर साथ ही अपने प्रसिद्ध लोक वाद्य अलगोजा को जोड़कर इस रसिया को नये रंग-रूप में प्रस्तुत किया है। यह रसिया इस प्रकार गाया जाता है-

"रोमझोम-रोमझोम झननन झनझोम लाल जी पैंजुनियाँ बाजै, रे लाल की अलगोजा बाजै रे।
जसुमति सुत को चलन सिखावै। उगरी पकरि है जनियाँ ।
लाल की पैजुनियाँ बाजे रे।"

इन रसियों से यह सिद्ध हो जाता है कि सर्वप्रथम भक्त कवियों/संतों की वाणी को ही लोक धुनों में ढालकर उन्हें रसिया के रूप में गाया गया था। इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि रसिया का उद्भव भक्त कवियों की पद वाणी से ही हुआ है।

**रसिया का विकास और गायकी के विविध रूपः-**

रसिया लोकगीत का उदय मूलतः ब्रज क्षेत्र के बरसाना, नन्दगाँव और गोकुल गाँवों में हुआ था, यहाँ से उदित यह रसिया गीत जल्द ही न केवल पूरे ब्रज क्षेत्र में बल्कि पूरे उत्तर भारत के विभिन्न अंचलो में लोकप्रिय हो गया। चन्दसखी, नारायण स्वामी, पुरुषोत्तम प्रभु जैसे अनेक विद्वानों ने अपनी रचनाओं और साहित्यिक कृतियों के माध्यम से रसिया को लोकप्रिय बनाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मंदिरों से लेकर सामाजिक उत्सवों तक रसिया ने इस पूरे क्षेत्र में अपना विशेष स्थान हासिल किया है। स्वर्गीय चन्दन जी बालाजी, लक्ष्मण प्रसाद चौबे जैसे वैष्णव भक्ति संगीत के विख्यात गायकों ने तो रसिया को अपनी ही मौज में शास्त्रीय रागों से सजाकर बड़े ही प्रभावी तौर पर प्रस्तुत किया। उनकी रसिया गायन शैली ठेठ लोक गायकों से सर्वथा भिन्न और श्रवण में अत्यंत माधुर्यता का भाव पैदा करने वाली थी। इसे हम वैष्णव मंदिरों के रसिया गायकी का एक विशिष्ट रूप या शैली के रूप में जानते हैं।

**रास और रसिया:-** रसिया की माधुर्यता और उसके भाव ने रास ग्रन्थ को भी प्रभावित किया और विषेश रूप से रास लीलाओं के कथानकों के बीच-बीच में रसिया के गायन और उन पर नृत्य करने की विधा ने पूरे ब्रज क्षेत्र में रसिया को और भी अधिक लोकप्रिय बनाया। चन्दसखी और नारायण स्वामी जैसे विद्वान रासमण्डलियों से गहरे और भावनात्मक रूप से जुड़े थे। दोनों ने स्वयं रासमण्डलियों का संचालन किया और रास के माध्यम से इनके रसिया शनैः शनैः पूरे देश में विख्यात हो चुके थे, चन्दसखी का एक रसिया तो आज भी जन्माष्टमी के अवसर पर प्रत्येक घर में सुना जाता है। उदहारण के लिए इस रसिया के बोल कुछ इस प्रकार से हैं-

"कन्हैया झूले पलना नेंक हौले झोटा दीजौ।
काहे कौ याकौ बनौ रे पालनों काहे के लागे फूँदना।"

स्वामी मेधाश्याम जी ने अपने सभी रसियों को रामलीला के कथानक को आधार बनाते हुए गढा है। वस्तुतः यदि हम यह कहें की उनकी रचनाओं में उन्होंने सम्पूर्ण रास को ही रसिया में ढाल दिया है तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगी। आज भी उनके रसियाओं का रामलीलाओं में गायन होता है। उन्होंने संवाद मूलक रसिया भी प्रचुर मात्रा में लिखा है, जहाँ उनके रसियाओं में साहित्य जैसी अलंकारिता है

वहीं गोपियों के स्वरूप की एक स्पष्ट झलक को भी उनके श्रृंगार रस से युक्त रसिया में देखा जा सकता है। उदहारण के लिए उनके रसिया की कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जा रही हैं-

"झीनी-झीनी अति रंगभीनी, चौरणी चटक चँदरिया में।
नैना हारस रहें दरसन कूँ, छिप रहयौ चंद बदरिया में।
पट ओट चोटकर डुबकी पलक पिटारिया में झीनी।।"

इनकी उक्त पंक्तियों में अनुप्रास, उपमा जैसे विभिन्न अलंकारो के सहज ही दर्शन हो जाते हैं। समय के साथ साथ रसिया का प्रचार और प्रसार निरंतर बढ़ता गया और जैसे-जैसे रसिया का क्षेत्र बढ़ा वैसे वैसे, रसिया के गायिकी के विषयों में भी विविधता आती गई। गाँव-गाँव में रसिया लेखक और गायकों का समुदाय एक निश्चित आकार ग्रहण करने लगा, जिसने समस्त वातावरण को ही रसमय और संगीतमय बना दिया। गोवर्द्धन नगर तो बाद में रसिया लेखकों व गायकों के प्रबल गढ़ के रूप में उभरा। यहाँ घीसाराम द्विज और घीसाराम पहलवान नाम की दो विभूतियों ने रसिया के प्रचार-प्रसार में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। घीसाराम द्विज एक प्रसिद्ध आशुकवि भी थे जिन्होंने सामाजिक जीवन की समस्याओं का हल भी अपने रसिया के माध्यम से करने की कोशिश की है। उदाहरण के लिए एक दृष्टांत इस प्रकार है कि- जब एक बार इनके मित्र ब्रजलाल की क्रोधित पत्नी गोवर्द्धन से रूठकर अपने मायके 'कामा' चली गई और किसी भी प्रकार लौटकर ससुराल आने को तैयार न् हुई तब कामा गांव में पंचायत का आयोजन किया गया, लेकिन पंचों के आग्रह पर भी उसके माँ, बाप, लड़की को भेजने को तैयार नहीं हुए तब घीसाराम जी ने कामा में उनके मकान की दीवारों और गली में रात को गेरू घोलकर एक रसिया लिख दिया जो कुछ इस प्रकार था-

"हम गोवर्द्धन ते लैवे आये। बड़े अधोरी कामाँ बारे।
बेटी बेचिकैं करें गुजारे, इन ऐसे करे झुकाये, हम गोवर्द्धन ते लैबे आये।"

इस रसिया को पढ़ने के लिए गाँव के लोगों की भीड़ मोहल्ले में जुटने लगी तो बदनामी के भय से लड़की वालों ने समझौता कर लिया और घीसाराम जी अपने मित्र की बहू को घर लाने में सफल हो गये थे। इसी क्षेत्र के दामोदर जाट भी बड़े प्रतिभाशाली नर्तक, रसिया लेखक और प्रसिद्ध गायक थे, जिन्होंने वेदान्त जैसे गंभीर विषय पर अपने रसिया लिखे हैं। "नसैनी बिन भायेली कैसे पिया की अटारी चढौ जाए" जैसी प्रसिद्ध रसिया आपकी ही लेखनी की उपज है। इनके द्वारा लिखित अधिकाँश रसियाओं में जिनमें संसार की क्षणभंगुरता और मिथ्या संबंधों का बड़ा ही सजीव चित्रण देखने को मिलता है।

**हाथरस की रसिया गायिकी:-** हाथरस जनपद में लल्लू भजना ने रसिया गायन का एक केन्द्र स्थापित किया जो इस क्षेत्र में काफी लोकप्रिय हुआ। इस केन्द्र से अनेक नई धुनों का विकास हुआ और दो परस्पर भिन्न केन्द्रों के मध्य रसिया प्रतियोगिता की परंपरा प्राम्भ हुई। इस प्रतियोगिता के दौरान दोनों दलों के प्रतिनिधि एक दूसरे को चुनौती भरे प्रश्न और उत्तरों के माध्यम से पूरी रात रसिया गीतों का प्रदर्शन करते जिसमें आस-पास के गाँवों के सभी लोग भी हर्ष और उन्माद के साथ प्रतिभाग करते थे। अब धीरे धीर गायकों के साथ ही इन केन्द्रों में रसिया लेखक भी जुड़ने लगे, जो आवश्यकतानुसार प्रतिद्वन्दी केन्द्र के रसिया का तत्काल उत्तर लिखकर रसिया गायकों को उपलब्ध करवाने लगे। विषयों की विविधता व धुनों के विस्तार के साथ-साथ ताल और वाद्य के रूप में हारमोनियम और शहनाई का प्रयोग भी अब रसिया में प्रचलन में आ गया। इस दौरान इन दंगलों में स्त्री और पुरुषों द्वारा अभिनय भी प्रारंभ हो गया जिसने इस रसियों को और भी अधिक लोकप्रियता प्रदान करी। इन प्रतिस्पर्धाओं में एक-दूसरे का छेड़-छाड़ के लिए व्यंग-वचन सुनाने और अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करके दूसरे दल को हीन बताने की गायन शैली भी अब इसका अंग बन गई और इसे ही रसिया की भाषा में "फटकेबाजी" कहा जाता है। साथ ही इस संगीत गायन परम्परा में अनेक धुनों का प्रयोग होता है, जिन्हें 'रंगत' कहा जाता है। कुछ प्रमुख रंगतों में शामिल हैं- **'कलंगड़ा रंगत'**- रंगत का यह प्रकार शास्त्रीय रागों पर आधारित है। **'जिकड़ी रंगत'**- इसमें लोकगीतों के आधार पर रसिया की धुनें तैयार की जाती हैं। **'सौ कड़ियाँ'**- इसमें कड़ी से कड़ी जोड़कर रसिया का निर्माण किया जाता है। **'हैकरा'**- इस प्रकार की रंगत में स्वांसों का पूरा जोर लगता है, जिसे गा पाना किसी भी साधारण गायक के लिए अत्यंत कठिन है, अतः इस प्रकार के रसिया का गायन एक मंझा हुआ कलाकार ही कर सकता है। लाला खिच्चोमल आटेवाले इस क्षेत्र में बड़े प्रसिद्ध गायक थे, जिनका २००० के दशक में ही स्वर्गवास हुआ है। 'जमुना किनारो मेरो गान, साँमरे आयँ जाइयों' इनका प्रसिद्ध रसिया है। वस्तुतः रसिया हाथरस के लोक संगीत का सम्राट है। वर्तमान में स्त्रियाँ भी इस लोक गीत में अपनी पूर्ण सहभागिता दर्ज दर्ज कराती हैं। होली और अन्य त्यौहारों, विवाह उत्सवों में रसिया का गायन और उस पर नृत्य महिलाओं द्वारा किया ही जाता है। रसिया का गायन हाथरस में ही नहीं बल्कि गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, बिहार और सौराष्ट्र तक में लोकप्रिय है। परन्तु दुःख की बात यह है कि वर्तमान समय के रसिया-गायक अब रसिया की प्रतिस्पर्धाओं में फिल्मी धुन में संगीत का प्रदर्शन करने लगे हैं जो इस परम्परा के लिए एक अभिशाप समान है, क्योंकि जहाँ इससे एक ओर रसिया की मूल आत्मा पर कुठाराघात हुआ है वहीं एक प्राचीन लोकपरम्परा के अस्तित्व पर भी संकट के बादल घिर आये हैं। रसिया-गायिकी के शुद्ध स्वरूप की रक्षा व इसके प्रचुर साहित्य के संकलन, अभिलेखन व संरक्षण की आज नितांत आवश्यकता है ताकि इस लोक कला को एक अंतर्राष्ट्रीय पहचान मिल सके। रसिया गायकों को प्रोत्साहन देकर ही ब्रज की इस कलात्मक धरोहर की रक्षा की जा सकती है ओर हमें आशा है कि लोक-संस्कृति के प्रेमी इस ओर अवश्य ही ध्यान देगें। इस प्रकार से यदि हम रसिया के इतिहास को टटोलने की कोशिश करें तो हम पायेंगे की यह ब्रज लोक संगीत का मुकुट मणि है। शयद ही लोक जीवन से सम्बंधित कोई ऐसा विषय शेष रहा होगा जिस विषय पर रसिया गीत न लिखे गए हों।

**सन्दर्भ-ग्रंथ सूची:**

1. रावत निशा, ब्रज का लोक संगीत, पृष्ठ संख्या- 28, 29
2. संगीत निबन्ध माला, पृष्ठ संख्या- 96
3. रावत निशा, लोक और लोक संगीत, पृष्ठ संख्या- 29
4. धरोहर, पृष्ठ संख्या- 45

5. श्रीमती कुसमलता, हाथरस के संगीत की प्रमुख विधायें, पृष्ठ संख्या- 43, 44
6. हाथरस के लोक संगीत के प्रमुख रूप, पृष्ठ संख्या- 102, 104
7. शर्मा हरिशंकर, ब्रज के रसिया और उनकी धुनें, पृष्ठ संख्या- 79, 80